सिनेमा और सेंसरशिप

चर्चा में क्यों

हाल ही में सुप्रीम कोर्ट ने एक फिल्म पर प्रतिबंध लगाने की माँग करने वाली याचिका को खारिज़ कर दिया है। कोर्ट ने कहा है कि बिना वैध कारण के अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर लगाम नहीं लगाई जा सकती है। उल्लेखनीय है कि केन्द्रीय फिल्म प्रमाणन बोर्ड हाल के दिनों में कई अनचाही वजहों से चर्चा में रहा है।

हालिया घटनाक्रम

- केंद्रीय फिल्म प्रमाणन बोर्ड ने नोबेल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन की 'द आर्ग्युमेंटेटिव इंडियन' नामक पुस्तक पर इसी नाम से निर्मित डॉक्यूमेंट्री फिल्म में आए 'गुजरात', 'गाय', 'हिंदुत्व' और 'हिंदू इंडिया' जैसे शब्दों पर आपत्ति जताते हुए कहा कि वह फिल्म को तभी प्रमाणित करेगा जब इन शब्दों को निकाल या 'म्यूट' कर दिया जाए।
- इसके पहले बोर्ड ने 'लिपिस्टिक अंडर माय बुर्का' को यह कहकर प्रमाण पत्र देने से मना कर दिया था कि फिल्म 'लेडी ओरिएंटेड' है और उसमें उनके सपनों एवं फंतासियों को 'ज़िंदगी से ज़्यादा' तवज्जो दी गई है।
- इसके पहले सेंसर बोर्ड ने कोलकाता क्षेत्रीय कार्यालय को नोटबंदी के प्रभावों पर बनी बांग्ला फिल्म 'शून्यौता' यानी खालीपन की भी रिलीज़ रोक दी है।

क्या होना चाहिये

- यह कहना गलत नहीं होगा कि एक फिल्म निर्माता की सारी मेहनत महज़ केन्द्रीय फ़िल्म प्रमाणन नामक एक संस्था के हाथ में होती है। हालाँकि सेंसर होना जरूरी भी है, क्योंकि जहाँ भारत का संविधान अभिव्यक्ति की आज़ादी देता है, वहीं यह अभिव्यक्ति पर उचित प्रतिबंध की भी बात करता है। सेंसर बोर्ड को पूरा ध्यान देना होता है कि कोई भी ऐसा संदेश फिल्मों के ज़रिये लोगों तक न पहुँचे जिससे देश की शांति भंग हो।
- हालाँकि यह सच है कि संविधान सरकार को अनुच्छेद 19 (1)(ए) में दी गई अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को राष्ट्रीय सुरक्षा से लेकर मित्र देशों के साथ संबंध बिगड़ने की आशंका तक कई आधारों पर सीमित करने की इज़ाज़त देता है। लेकिन यह आशंका किसी फिल्म से पैदा हो सकती है या नहीं, यह तय करने का सबसे श्रेष्ठ आधार कोई फिल्म प्रमाणन संस्था नहीं हो सकती। यह काम राज्य सरकारों पर छोड़ा जा सकता है जो लोगों और उनके प्रतिनिधियों के प्रति कहीं सीधे तौर पर जवाबदेह होती हैं।
- केन्द्रीय फ़िल्म प्रमाणन बोर्ड को सेंसरशिप या पुलिस का काम करने के बजाय अपना काम यहीं तक सीमित रखना चाहिये कि कौन सी फिल्म किस दर्शक वर्ग के लिये ठीक है, इसके अलावा आदर्श स्थिति यह होगी कि प्रमाणन संस्था का नेतृत्व किसी ऐसे व्यक्ति के हाथ में होना चाहिये जिसकी सिनेमा या कला के दूसरे माध्यमों से जुड़े लोगों के बीच कुछ प्रतिष्ठा हो। फिल्में सच में समाज का दर्पण तभी बन पाएंगी जब प्रमाणन संस्था को राजनीति से प्रेरित नियुक्तियों और भेदभाव से निज़ात मिलेगी।

PDF Refernece URL: https://www.drishtiias.com/hindi/printpdf/cinema-and-censorship